आत्महित का अपूर्व अवसर

अरे आत्मा ! आयु तो चली जा रही है। भाई ! जो कुछ सौ या पचास वर्ष आयु बांधी थी, वह तो गलती जा रही है; लेकिन आयु गलने पर भी तेरी तृष्णा गलती नहीं है। जहाँ पर की भावना है, वहाँ तृष्णा गले भी किसतरह ? आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान बिना तृष्णा घटती नहीं। अज्ञानी ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, त्यों-त्यों अन्दर तृष्णा बढ़ती ही जाती है। आशा के छोर लम्बाते ही जाते है। जब आशा के बीज बोये है तो बड़ा वृक्ष उत्पन्न होगा ही। भगवान आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान और भान बिना पर का यह करना, वह करना ह्र ऐसी भावना से तृष्णा बढ़ती जाती है।

कुत्ते की तरह अज्ञानी जहाँ-तहाँ बाहर में भटकता है। जैसे कुत्ता घर के दरवाजे की जाली में रोटी के टुकड़े के लिए सिर मारता है; वैसे ही अज्ञानी तृष्णा के वशीभूत होकर मान-बड़ाई और उच्चता के लिए दुनिया के पास भिखारी की भांति याचना करता है। वह भिखारी है, रंक है। राजा महाराजा भी भिखारी ही है, भले ही वे करोड़-करोड़ ग्राम के अधिपती हो। वे भिखारियों में भी बड़े भिखारी है। आयु गलती है तो भी तृष्णा गलती नहीं, वह तो बढ़ती ही जाती है; मोहभाव फैलते ही जाता है; लेकिन आत्महित की भावना स्फुरीत ही नहीं होती। ये मान-सन्मान बड़प्पन की चाह में तेरा अमूल्य समय चला जा रहा है। भाई ! ये आत्महित का अपूर्व अवसर है अत: चेत।

ह्र योगसार प्रवचन, पृष्ठ : 80-81

अहिंसा चैनल पर डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन
प्रतिदिन प्रात: ७ बजे से अवश्य सुनें।

अहिंसा चैनल आपके यहाँ न आता हो तो फोन नं. (011) 51598351, 51598353, 9810371078 पर संपर्क करें।

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 21 251 अंक : 11

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

इक द्रव्य को पर्यय सहित यदि नहीं जाने जीव तो।
फिर जान कैसे सकेगा इक साथ द्रव्यसमूह को।।४९।।
पदार्थ का अवलम्ब ले जो ज्ञान क्रमश: जानता।
वह सर्वगत अर नित्य क्षायिक कभी हो सकता नहीं।।५०।।
सर्वज्ञ जिन के ज्ञान का माहात्म्य तीनों काल के।
जाने सदा सब अर्थ युगपद् विषम विविध प्रकार के।।५१।।
सवार्थ जाने जीव पर उनरूप न परिणमित हो।
बस इसलिए है अबंधक ना ग्रहे ना उत्पन्न हो।।५२।।
नमन करते जिन्हें नरपति सुर-असुरपति भक्तगण।
मैं भी उन्हीं सर्वज्ञजिन के चरण में करता नमन।।•

सुखाधिकार

मूर्त और अमूर्त इन्द्रिय अर अतीन्द्रिय ज्ञान-सुख।
इनमें अमूर्त अतीन्द्रियी ही ज्ञान-सुख उपादेय हैं।।५३।।
अमूर्त को अर मूर्त में भी अतीन्द्रिय प्रच्छन्न को।
स्व-पर को सर्वार्थ को जाने वही प्रत्यक्ष है।।५४।।

• आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त गाथा

ह्र डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

जिसके पास जो होता है, वह वही देता है

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 23 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है –

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
'ददाति यत्तु यस्यास्ति' – सुप्रसिद्धमिदं वचः ।।23।।

अज्ञान अर्थात् ज्ञानरहित शरीरादि की उपासना से अज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञानी पुरुषों की सेवा से ज्ञान की प्राप्ति होती है; क्योंकि जिसके पास जो होता है, वह वही देता है – यह बात सुप्रसिद्ध है।

(गतांक से आगे .....)

यहाँ इष्टोपदेश शास्त्र की 23 वीं गाथा पूर्ण हो गई, तथापि उसका विशेष व्याख्यान करते है। इस गाथा में यह कहा गया है कि अज्ञानी की सेवा करने से अज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञानी की सेवा करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है; क्योंकि **जिसके पास जो होता है, वह वही देता है** ह्न यह बात सुप्रसिद्ध है।

पूज्यपादस्वामी जिज्ञासु शिष्य को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे भद्र ! जिसने ज्ञान की उपासना करके स्व-पर विवेकज्योति प्रगट की है तथा आत्मा को आत्मा द्वारा आत्मा में ही निरन्तर सेवन करते हुए जो आत्मा को जानता है, वह ज्ञानी है। आत्मा की उपासना करने के लिए यह आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप है, रागादिभावस्वरूप नहीं है ह्न ऐसी भेदविज्ञानरूपी स्व-पर विवेकज्योति प्रगट होना अत्यन्त आवश्यक है, जिसकी शुद्ध परिणति द्वारा ज्ञानी जीव आत्मा की ही निरन्तर सेवा करता है।

देखो ! यहाँ आत्मा की सेवा करने योग्य है ह्न ऐसा कहते है। परद्रव्यों की सेवा करना तो शुभराग है, वह करनेयोग्य नहीं है ह्न ऐसा न कहकर 'आत्मा की ही सेवा करनेयोग्य है' ह्न ऐसी अस्ति से बात कही है।

भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप है तथा पुण्य-पाप रागादिस्वरूप हैं, दु:खस्वरूप हैं; इसलिए पुण्य-पापादि से भेदज्ञान करके आत्मा को आत्मा द्वारा आत्मा में ही सेवन करना चाहिये।

वास्तव में देखे तो त्रिलोकीनाथ परमात्मा की प्रतिमा हो अथवा साक्षात् तीर्थंकर भगवान हो उनकी सेवा का लक्ष करना शुभभाव है, धर्मभाव नहीं। कुछ लोगों को यह बात बुरी लगती है; लेकिन क्या करें ? वास्तव में तो शुभभावों से भी जुदा होकर आत्मा का सेवन करना धर्म है, संवर-निर्जरा है।

यह भगवान आत्मा सत्-चिदानन्दप्रभु स्वयं ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है, अनंत आनन्दमय है; उसकी अन्तर में एकाग्रता करके स्वभावसन्मुखता करना ही आत्मसेवा और आत्मधर्म है। दया-दान-पूजा-भक्ति-यात्रा इत्यादि सभी शुभभाव हैं; लेकिन धर्म नहीं।

आचार्य पूज्यपादस्वामी ने अत्यन्त कम शब्दों में यह बात कही है। कोई जीव कहे कि यहाँ भगवान की पूजा-भक्ति करने का निषेध किया है तो उससे कहते है कि हे भाई ! दया-दान-पूजादि सभी शुभभाव हैं, वे नहीं करना ह्न ऐसा आचार्यदेव नहीं कहते; लेकिन इन सभी भावों में धर्म नहीं है ह्न ऐसा समझना चाहिये।

यह जीव शुभभाव तो अनादि से करता आया है, उसमें उसने नवीन क्या किया ? मंदिरनिर्माण, मूर्तिपूजा आदि बहुत होते है; लेकिन उन सबकी मर्यादा शुभभावरूप ही है। इन शुभभावों से कोई जीव यह समझे की मुझे संवर-निर्जरा प्रगट हो गई तो इस बात में दम नहीं है।

चैतन्यमूर्ति ज्ञायक भगवान आत्मा में समस्त विकल्पों का अभाव है, वह तो ज्ञान-आनन्दरूप अनन्त शक्तियों का भण्डार है। उस आत्मा की भक्ति से, उसकी निर्विकल्प एकाग्रता से ही ज्ञान का फल प्राप्त होता है। ज्ञानस्वभाव में ज्ञान की एकाग्रता द्वारा ही ज्ञान का रसास्वादन किया जा सकता है। भगवान आत्मा के ज्ञानस्वरूप का ज्ञान, उस की श्रद्धा और उस में ही लीनतारूप आत्मा की सेवा करने से ज्ञानस्वरूप की पूर्णता होती है।

इस पंचमकाल में हुए पूज्यपादस्वामी भावलिंगी संत थे, जंगल में निवास करते थे। वे पंचमकाल के जीवों के कल्याण के लिए यह बात कह गये।

लोग पंचकल्याणक कराते हैं, बड़ी से बड़ी रथयात्रा निकालते हैं, पाँच-पच्चीस लाख रुपये खर्च करते हैं; इससे वे समझते हैं कि बहुत धर्म हो गया। लेकिन भाई ! यह समस्त कार्य शुभभाव हैं, धर्म नहीं।

धार्मिकप्रसंगों में तदनुसार आनेयोग्य शुभभाव आये बिना नहीं रहते, वे अवश्य ही आते हैं; लेकिन वे सभी धर्म नहीं हैं, अज्ञानभाव हैं; उनमें ज्ञानस्वभाव का अभाव है। 'ज्ञ' स्वरूपी भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है; उसकी अन्तर में एकाग्रता करे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागतारूप फल स्वयं की ही पर्याय में प्रगट होता है।

प्रश्न : प्रभु ! शुभभाव से पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती है; लेकिन पूर्णता के समीप तो जा सकते हैं। जैसे कोई वस्तु 100 फीट दूर हो, उसके समीप तो नहीं जा सकते; किन्तु 50 फीट तो जा सकते हैं ?

उत्तर : नहीं ! नहीं भाई !! यही तो समझने योग्य बात है। **एक होय त्रणकाल मां परमारथनों पंथ।** भगवान आत्मा ज्ञान की ज्योत निर्दोष निर्विकारी चैतन्यपिण्ड है, उसकी सेवा और एकाग्रता करने से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है; लेकिन उसके बीच आनेवाले शुभभाव धर्म नहीं है, शुभभाव के समीप आत्मा है ही नहीं।

जिसके पास जो होता है, वह वही देता है ह्न इस बात का तात्पर्य यह है कि पैसेवाले के पास पैसा मिलेगा, लेकिन भिखारी के पास क्या मिलेगा ? जिसके पास जो वस्तु है ही नहीं, वह उस वस्तु को कहाँ से देगा ? तेरे शुभभावों में तेरा ज्ञान नहीं है। कहीं मंदिर में, शिखरजी या शत्रुंजय में भी तेरा ज्ञान नहीं है, यहाँ तक कि समवशरण में साक्षात् भगवान के समक्ष भी तुझे तेरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। तेरा ज्ञानस्वरूप तो तुझमें है, परद्रव्यों में नहीं। वह तेरे स्वयं से ही प्राप्त होगा।

भगवान आत्मा ज्ञान का दरिया, चैतन्य का पूर है; उसमें एकाग्रता करने के

लिये आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रगट करना होगा। परद्रव्यों में जब ज्ञान है ही नहीं तो उनमें से ज्ञान कैसे आयेगा ?

जिसप्रकार शाक-भाजी की दुकान से शाक-भाजी ही प्राप्त हो सकती है, हलवाई की दुकान में मिठाई ही होगी और वहाँ मिठाई ही मिलेगी, कपड़े की दुकान में कपड़ा ही मिलेगा; लेकिन कपड़े की दुकान में शाक-भाजी या मिठाई मिलनेवाली नहीं है; उसीप्रकार यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा की दुकान में ज्ञान और आनंद भरा हुआ है, उसमें एकाग्रता करे तो ज्ञान और आनंद की ही प्राप्ति होगी। शुभभावों में एकाग्रता करे तो पुण्य बंध होगा तथा स्त्री-पुत्र परिवार आदि में एकाग्रता करे तो पाप बंध होगा।

आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई ! तुझे अपना हित करना है या नहीं ? जिसे अपना हित करना है, उसके लिये यह इष्ट-उपदेश है।

शुभभाव में धर्म नहीं है, यह खरी बात है; किन्तु कुछ लोग कहते हैं कि यह बात आज की दुनिया के लिये नहीं है, आज के लोग इस बात को सुनकर स्वच्छंदी हो जायेंगे। पर भाई ! ऐसी बात नहीं है। तुझे सत्य एवं असत्य बात को समझना चाहिये। सत्य बात की प्ररूपणा होने से सत्य का ही लाभ होगा, असत्य का नहीं। लोगों को सत्य बात बुरी लगती है, लेकिन सत्य तो सत्य ही रहेगा, दुनिया के कहने से सत्य कभी असत्य नहीं हो सकता।

जिसे अन्तरंग का निश्चय हुआ है; परन्तु पूर्ण वीतरागदशा प्रगट नहीं हुई है, उन बुद्धिमानों के लिये व्यवहार कहा है। उससमय शुभभाव होते हैं, लेकिन उसमें बंधन है। उन शुभभावों में ज्ञान और आनंद का पुट कदापि नहीं हो सकता।

प्रश्न : मूर्तिपूजा में धर्म नहीं है तो फिर मूर्ति का नहीं होना ही योग्य है?

उत्तर : ऐसा नहीं है भाई ! निश्चय के साथ व्यवहार होता है। जबतक पूर्णता प्राप्त नहीं होती, तबतक बुद्धिमानों को यह शुभभाव आये बिना नहीं रहता; लेकिन भगवान की पूजा-भक्ति दानादिरूप शुभभावों से बंध ही होगा, उससे संवर-निर्जरा मानना जीव की भूल है। **(क्रमशः)**

आप्त कौन है ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की पाँचवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है –

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं ।
ववगयअसेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो ।।5।।

आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है; जिसके अशेष (समस्त) दोष दूर हुए हैं – ऐसा सकल गुणमय पुरुष आप्त है।

अब पाँचवीं गाथा में व्यवहारसम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं। व्यवहार सम्यग्दर्शन भी जिसे नहीं, उसे तो परमार्थ सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को जो पहचानता नहीं और सभी देव-गुरु-शास्त्र सच्चे हैं ह्न ऐसा जो मानता है; उस जीव को तो व्यवहारसम्यक्त्व भी नहीं; वह तो वैनयिकमिथ्यादृष्टि है। इसलिये यहाँ व्यवहारसम्यक्त्व का स्वरूप कहा जाता है।

सच्चा देव कैसा होता है, उसके कहे हुये शास्त्र कैसे होते हैं और उनमें कहे हुए तत्त्व कैसे होते हैं; इसका जिसे श्रद्धान है और इसके अतिरिक्त जो अन्य किसी को मानता नहीं, उस जीव को व्यवहारसम्यक्त्व है। परमार्थसम्यक्त्व तो अन्दर के चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा में है। व्यवहारसम्यक्त्व तो बारदाने जैसा है; माल खरीदने जाये, वहाँ माल रखने के लिये बारदाना होता है अवश्य; किन्तु बारदाना भिन्न है और माल भिन्न है। उसीप्रकार व्यवहारसम्यक्त्व में जो देव-गुरु-शास्त्र की और नवतत्त्व की श्रद्धा होती है, वह तो शुभराग है। तथा जो परमार्थस्वभाव की राग रहित श्रद्धा है, वह निश्चयसम्यग्दर्शन है।

यह व्यवहारसम्यग्दर्शन के स्वरूप का कथन है। जहाँ आत्मा के स्वभाव की श्रद्धारूप निश्चयसम्यक्त्व हो और वीतरागता हुई हो; वहाँ ऐसा व्यवहारसम्यक्त्व होता है। व्यवहारसम्यक्त्व अर्थात् आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा। उसमें

अरहन्त भगवान आप्त हैं, उनके समस्त दोषों का नाश हो गया है। उनके अभी योग का कम्पन इत्यादि होने पर भी उन्हें सकल दोष रहित कहा गया है। घातिया कर्मों के निमित्त से होनेवाले समस्त दोष नष्ट होकर केवलज्ञानादि प्रकट हो गये हैं, इस अपेक्षा से उन्हें 'सकल दोषविमुक्त' एवं 'सकल गुणमय' कहा है। ऐसे आप्त अरहन्तदेव की श्रद्धा व्यवहारसम्यक्त्व है। सर्वज्ञ परमात्मा 'सकल गुणसहित' और 'सकल दोषरहित' हैं अर्थात् गुणों की अस्ति और दोषों की नास्ति से यह कथन किया है।

आप्त अर्थात् शंकारहित। यहाँ शंका में अठारह दोषों का समावेश कर दिया है। शंका मात्र दर्शनमोह नहीं, अपितु रागादि सभी भावों को शंका में गर्भित किया है; क्योंकि जहाँ रागादि भाव हैं, वहाँ स्थिरता नहीं है। स्थिरता के अभाव को यहाँ शंका कहा है। ऐसी शंका का जिसके अत्यन्ताभाव है अर्थात् मोह-राग-द्वेषादि दोषों से जो रहित है, वही आप्त है।

अपनी शुद्ध चैतन्य की प्रतीति में तो राग या विकल्प है नहीं, किन्तु निचलीदशा में शुभराग और विकल्प होने पर आप्त, आगम और तत्त्वों की व्यवहारश्रद्धा होती है। उस श्रद्धा में आप्त, आगम और तत्त्व ऐसे ही होते हैं, इससे विपरीत को माने तो व्यवहारश्रद्धा भी नहीं है।

आप्त ऐसे अरहन्त देव के मुख कमल से निकली हुई, समस्त वस्तु-विस्तार के स्थापन करने में समर्थ ह्न ऐसी चतुर वचनरचना ही आगम है। देखो, यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का कथन है। वास्तव में आप्त तो आत्मा है, आत्मा के मुख नहीं होता; क्योंकि मुख तो औदारिक शरीर है, उसमें से भाषावर्गणा नहीं निकलती; परन्तु निमित्तरूप से पहचानने के लिये कहा कि भगवान की वाणी आगम है। सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में चतुर वचन-रचना है और वह समस्त वस्तु के विस्तार का स्थापन करने में समर्थ है।

श्रीमद्राजचन्द्रजी ने कहा - 'जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञान मां, कही शक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो' यह बात यहाँ लागू नहीं पड़ती। यहाँ तो कहते हैं कि समस्त पदार्थों को समझाने में निमित्त होने की सामर्थ्य सर्वज्ञ की वाणी में है। सर्वज्ञ का ज्ञान

परिपूर्ण जानता है और वाणी परिपूर्ण कथन करती है। उस वाणी को आगम कहते हैं, उसकी श्रद्धा व्यवहारसम्यक्त्व है।

भगवान की वाणी में बहिस्तत्त्व और अन्तस्तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व - इस भाँति दो प्रकार के तत्त्व कहे हैं। अन्तस्तत्त्व तो निज कारण परमात्मा चिदानन्द भगवान है और पुण्य-पाप इत्यादि सब बहिस्तत्त्व हैं। इसप्रकार दो भेद करके तत्त्व की श्रद्धा करना वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न : अन्तस्तत्व में तो कारणपरमात्मा की प्रतीति भी आ गई तो भी उसे व्यवहार क्यों कहते हो ?

उत्तर : यहाँ दो भेद के लक्ष से प्रतीति करने को व्यवहारसम्यक्त्व कहा है। अन्तस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व ऐसे दो भेद के लक्ष से जो प्रतीति हुई, वह व्यवहार-सम्यक्त्व है; किन्तु इसे व्यवहार कब कहा जाता है ? उस व्यवहार का निषेध करके अभेदस्वभाव की श्रद्धा की जाय, तब भेद की श्रद्धा को व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है।

मोक्षमार्गप्रकाशक में नवतत्त्व की श्रद्धा को निश्चयसम्यक्त्व कहा है और यहाँ उसे व्यवहारसम्यक्त्व कहा है। अन्तस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व ऐसे दो भेद वाली श्रद्धा को भी व्यवहारसम्यक्त्व कहा है। यहाँ तो अभेददृष्टि की प्रधानता से कथन है और वहाँ ज्ञान की प्रधानता से कथन है। ज्ञान में विकल्प टूट कर सम्पूर्ण जानने में आ गया है, इस अपेक्षा से नवतत्त्व की श्रद्धा को भी निश्चयसम्यक्त्व कहा है; परन्तु वहाँ भी ऐसे अभेद स्वभाव की श्रद्धापूर्वक के नवतत्त्व के ज्ञान की बात है। अभेद की श्रद्धा के बिना अकेले भेद के ज्ञान को सम्यक्त्व नहीं कहा है।

यहाँ कहते हैं कि अकेले अन्तस्तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व की दृष्टि परमार्थश्रद्धा है, और 'यह अन्तस्तत्त्व और यह बहिस्तत्त्व' ऐसे दो भेद के लक्षवाली श्रद्धा व्यवहारश्रद्धा है; क्योंकि उसमें राग है। उस राग से लाभ न माने और अन्तरस्वभाव की रागरहित श्रद्धा से ही लाभ माने तो उसे रागवाली श्रद्धा को व्यवहारश्रद्धा कहा जाता है। यदि राग से लाभ माने तो उसको व्यवहारश्रद्धा भी नहीं कहते।

अनन्त केवली और सिद्ध भगवान भी इस आत्मा से पर होने से बहिस्तत्त्व हैं और अपने में मोक्षपर्याय का भेद करना भी बहिस्तत्त्व है। अकेला निरपेक्ष कारण

परमात्मतत्त्व ही अन्तस्तत्त्व है। इसके अलावा भेद या विकल्प उठे, वह समस्त बहिस्तत्त्व हैं। सर्वज्ञ ने ऐसे दो प्रकार के तत्व कहे हैं।

जिसके लक्ष से विकल्प और राग हो, वह सब बहिस्तत्त्व में जाता है। पर्याय का भेद करना भी बहिस्तत्त्व है; क्योंकि पर्याय में से पर्याय नहीं आती, पर्याय के लक्ष से राग होता है। केवली भगवान भी बहिस्तत्त्व हैं, उनसे लाभ माने तो मिथ्यात्व होता है। और यदि सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी अन्य बात को माने, तब तो व्यवहारश्रद्धा भी नहीं है। ऐसे सर्वज्ञ कथित तत्त्वों के अतिरिक्त दूसरे तत्त्वों को माने तो उसको ऐसे आगम और तत्त्वों की श्रद्धा नहीं है।

सिद्धदशा है तो निर्मल; परन्तु वह भी पूर्ण तत्त्व नहीं है, वह एकसमयवर्ती दशा है। त्रिकाल परमात्मस्वभाव ही अन्तस्तत्त्व है। उस अकेले अन्तस्तत्त्व की प्रतीति तो निश्चयसम्यक्त्व है; किन्तु 'यह परमात्मतत्त्व और यह बहिस्तत्त्व' ऐसे भेद के विकल्प द्वारा निश्चय किया। उसका नाम व्यवहारसम्यक्त्व है। निश्चय सम्यक्त्व में भेद नहीं आता, उसमें तो अकेला अभेद कारणस्वभावभाव ही है; जबकि व्यवहारसम्यक्त्व में भेद पड़ता है।

अन्तर में अभेद की श्रद्धा है, इसलिये भेद की श्रद्धा है, ऐसा नहीं; और भेद की व्यवहारश्रद्धा है, इसलिये अभेद की श्रद्धा है – ऐसा भी नहीं। अभेद की परमार्थ श्रद्धा होने पर भी अभी राग है; इसलिये उस राग के कारण भेदवाली श्रद्धा है।

प्रथम ही तत्त्व के अन्तस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व ऐसे दो भेद किये; अब विशेषरूप से उसके सात प्रकार कहते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष – ऐसे सात तत्त्व हैं; उनकी श्रद्धा व्यवहार श्रद्धा है।

मैं जीव हूँ, परिपूर्णस्वभावी हूँ – जीव तत्त्व की ऐसी विकल्पवाली प्रतीति व्यवहारश्रद्धा है। दूसरे सभी जीव इस जीव से भिन्न हैं। छहों तत्त्वों को भिन्न रखते हुए जीवतत्त्व को भिन्न जाने, तो जीवतत्त्व को माना कहा जाये। यदि जीवतत्त्व को पुण्य-पापवाला माने तो जीवतत्त्व भिन्न नहीं रहता और यदि कर्मवाला माने तो जीव तथा अजीव तत्त्व भिन्न नहीं रहते अर्थात् ऐसे जीव को तो सात तत्त्वों की व्यवहार श्रद्धा भी नहीं हुई। जीव मूर्त्त भी है और अमूर्त्त भी है – ऐसा माने तो उसे जीवतत्त्व की श्रद्धा नहीं है। **(क्रमशः)**

शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

प्रश्न – शास्त्रों में ऐसा कथन भी तो आता है कि – 'व्यवहार साधन एवं निश्चय साध्य' इस कथन का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – हाँ, आता है; परन्तु वह उपचारकथन है; व्यवहार परमार्थरूप साधन नहीं है। आत्मा में स्वयं में ही एक साधन नामक गुण है। उससे आत्मा ही स्वयं साधनरूप होकर अपनी निर्मल वीतरागी पर्याय को प्रगट करता है। इसप्रकार आत्मा स्वयं ही अपना साधन है। विशेष स्पष्ट करें तो जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वही उसका साधन है। त्रिकाली एक ज्ञायकस्वरूप कर्म-नोकर्म से भिन्न स्वद्रव्य के आश्रय से साधकपने को पाकर सिद्ध होते हैं। यही धर्म प्राप्त करने की रीति है। स्वरूप के आश्रय से जिसको सिद्धदशा प्रगट हुई, उसे अल्पकाल में अचल सुखधाम सिद्धदशा प्रगट होगी।

अब कहते हैं कि जिन्हें अपने चिदानन्दस्वरूप चैतन्यवस्तु की पहचान नहीं है, जो आत्मा और शुभाशुभभावों को एक ही मानता है, वह मूढ है, अज्ञानी है। ऐसा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि शुभराग से अपना धर्मलाभ तथा व्यवहार करते-करते निश्चय धर्म होगा – ऐसा मानता है। वह मोक्षमार्ग की प्राथमिक भूमिका को भी प्राप्त नहीं कर पाता।

अहा ! जो भव्यपुरुष गुरु के उपदेश से या स्वयमेव काललब्धि पाकर मिथ्यात्व से रहित होकर ज्ञानमात्रा अपने स्वरूप को प्राप्त करता है, वह साधक होकर सिद्ध हो जाता है; किन्तु जो ज्ञानमात्रा अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं करता, वह संसार में ही परिभ्रमण करता है।

इस भूमिका का आश्रय करनेवाला जीव कैसा होता है, सो अब कहते हैं-

(वसंततिलका)

स्याद्वादकौशलसुनिश्चलसंयमाभ्यां यो भावयत्यहरहः स्वमिहोपयुक्तः।
ज्ञानक्रियानयपरस्परतीव्रमैत्रीपात्रीकृतः श्रयति भूमिमिमां स एकः।।267।।

स्याद्वाद कौशल तथा संयम सुनिश्चल, से ही सदा जो निज में जमे हैं।
वे ज्ञान एवं क्रिया की मित्रता से, सुपात्र हो पाते भूमिका को ।।

जो पुरुष, स्याद्वाद में प्रवीणता तथा रागादिक अशुद्ध परिणति के त्यागरूप सुनिश्चल संयम द्वारा अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा में उपयोग को लगाता हुआ प्रतिदिन अपने को भाता है, वही एक ज्ञाननय और क्रियानय की परस्पर तीव्र मैत्रीी का पात्रारूप होता हुआ, इस भूमिका का आश्रय करता है।

यहाँ स्याद्वाद की प्रवीणता और सुनिश्चल संयम - इसप्रकार दो बातें लीं हैं। यहाँ स्याद्वाद की प्रवीणता से तात्पर्य यह है कि - द्रव्यस्वरूप अर्थात् त्रिाकाली एक ज्ञायकस्वभाव में निमित्त, राग अथवा पर्याय नहीं है तथा निमित्त, राग या पर्याय में भगवान ज्ञायकस्वभाव नहीं है। इसप्रकार स्व के आश्रय से जो ज्ञान-श्रद्धानरूप परिणमन होता है, वह स्याद्वाद की प्रवीणता है। शुद्ध में रागादि नहीं एवं रागादि में शुद्ध नहीं - ऐसा ज्ञान का परिणमन स्याद्वाद की विशेषता है तथा जिसमें अशुद्ध परिणति का त्याग वर्तता है - ऐसी स्वरूप की रमणता, स्थिरता, निश्चलता संयम है।

स्याद्वाद की प्रवीणता और सुनिश्चल संयम - इन दोनों के द्वारा जो पुरुष अपने में ही उपयोग को स्थिर रखता है, प्रतिदिन अपने स्वरूप को भाता है, वह साधकपने को प्राप्त होता है।

जिसे सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान प्रगट हुआ है, उसे स्व के आश्रय से सुनिश्चल संयम प्रगट होता है। ज्ञान-श्रद्धान होने में स्वभावसन्मुख होने का जो पुरुषार्थ होता है, उससे निश्चल संयम होने में चारित्र का अनेकगुणा पुरुषार्थ होता है। चारित्रा अर्थात् सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान पूर्वक आत्मा में विशेषपने रमना, स्थिर होना, जमना, आचरण करना। चारित्र में स्वानुभव की सुनिश्चलदशा और प्रचुर आनन्द की अनुभूति होती है। जो पुरुष निरन्तर उपयोग को स्वरूप में उपयुक्त करके निज शुद्धात्मा को भाते हैं; वे पुरुष ही ज्ञाननय व क्रियानय की परस्पर तीव्र मैत्री के पात्र बनकर इस ज्ञानमात्र निजभावमय भूमिका का आश्रय करते हैं।

अहा ! देखो, ज्ञान एवं क्रिया अर्थात् चारित्र - दोनों की मैत्री के पात्ररूप होकर जो एक ज्ञानमात्र भूमिका का ही आदर करते हैं; वे ही साधकपने को प्राप्त होते हैं। अन्य जो राग में रुके हैं, वे सच्चे साधक नहीं हैं।

जो केवल शास्त्राों का ही अध्ययन करें, अन्तर्दृष्टि करके अशुद्धता को न टालें, वे प्रमादी और स्वच्छन्दी हैं। ऐसे शुष्क ज्ञानवालों को अन्तर में साधकपना प्रगट नहीं होता। वे केवल एकान्त से ज्ञाननय को ही ग्रहण करते है। वे अशुद्धता को टालकर अन्तर में प्रवेश नहीं करते हैं।

देखो, जो दया-दान-तप-व्रत-समिति-गुप्ति आदि के शुभभावों में संतुष्ट होते हैं, शुभभाव में ही धर्म मानते हैं; वे ज्ञाननय को ही नहीं जानते, उन्हें शुद्ध चिदानन्द आत्मा का भान नहीं है; अतः अब अनेकान्तमय आत्मा को बताते हैं।

द्रव्य-पर्याय स्वरूप आत्मवस्तु में जो त्रिकाली शुद्धद्रव्य है, वह पर्याय नहीं तथा जो एक समय की पर्याय है, वह शुद्धद्रव्य नहीं है। जो पुरुष ऐसे त्रिकाली शुद्धद्रव्य का अनुभव करते हैं, वे सम्यग्ज्ञानी हैं। अहा ! ऐसे सम्यग्ज्ञान और निश्चल संयम में जो वर्तते हैं, वे पुरुष ज्ञानमात्र निजभावमयी भूमिका का आश्रय करनेवाले हैं।

भगवान आत्मा पुण्य-पाप से रहित चिन्मात्रज्योतिस्वरूप है। उसका अन्तर्मुख होकर स्व-संवेदन अर्थात् अपने ही से अपना वेदन करना ज्ञाननय है तथा उसी में स्थिर होकर अशुद्धता के त्यागपूर्वक शुद्ध परिणतिरूप से परिणमना संयम है, क्रियानय है। सम्यग्ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान व राग के अभावरूप संयम - दोनों में गाढ़ मैत्री है। यह ज्ञाननय व क्रियानय की मैत्री है।

भाई ! अनेकान्त का यह अर्थ नहीं है कि - निजस्वभाव के आश्रय से भी धर्म होता है और राग के आश्रय से भी धर्म होता है; बल्कि राग या विभाव के आश्रय से धर्म नहीं होता - इसका नाम अनेकान्त है।

अहाहा.....! स्वयं अन्दर में ज्ञानस्वरूपी आत्मप्रभु में एकाग्र होकर उसी में ठहरने का नाम धर्म है। साथ में शुभभाव भी होता है; परन्तु वह शुभभाव धर्म नहीं। शुभभाव की व्यवहार में मैत्री कही है; परन्तु निश्चय से यह मैत्री नहीं है। यहाँ तो स्वाश्रय से प्रगट सम्यग्ज्ञान और स्वाश्रय से ही प्रगट संयमभाव की परस्पर मैत्री कही है।

यहाँ कहते हैं कि जिसने ज्ञाननय व क्रियानय की मैत्री साधी है अर्थात् जिसने सम्यग्ज्ञान और स्वरूपस्थिरता की प्रगाढ़ मैत्री साधी है, वही पुरुष ज्ञानमात्र -निजभावमयी होकर सिद्ध होता है। स्व-आश्रय से जो ज्ञान व वीतरागी शान्ति प्रगटी है, उसे यहाँ ज्ञाननय और क्रियानय की मैत्री कहा है। (क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : प्रवचनसार में उत्पाद-व्यय-ध्रुव - इन तीनों के अंशों को पर्याय का भेद कहा है ?

उत्तर : ध्रुव अंश और त्रिकाली ध्रुव दोनों एक ही है। भेद की अपेक्षा से त्रिकाली को अंश कहाँ है, पर वह अंश त्रिकाली ध्रुव ही है।

प्रश्न : पर्याय के षट्कारक स्वतंत्र हैं, पर्याय द्रव्य को नहीं स्पर्शती तो भी उस पर्याय को द्रव्य सन्मुख होना चाहिये ह्न ऐसा क्यों कहते है ?

उत्तर : पर्याय के षट्कारक स्वतंत्र है, पर्याय द्रव्य को नहीं स्पर्शती, तो भी पर्याय की स्वतंत्रता देखनेवाले का लक्ष द्रव्य पर ही होता है।

प्रश्न : पर्याय स्वतंत्र होते हुए भी उसका लक्ष द्रव्य पर ही क्यों होता है ?

उत्तर : द्रव्य पर लक्ष हो तभी पर्याय की स्वतंत्रता की यथार्थ श्रद्धा हो सकती है, पर की ओर लक्ष होने से नहीं और पर्याय की स्वतंत्रता के निर्णय का प्रयोजन भी द्रव्यसन्मुख होने से ही सिद्ध होता है। द्रव्यसन्मुख होने के प्रयोजन से ही पर्याय की स्वतंत्रता दिखती है।

प्रश्न : व्यय होनेवाली पर्याय के संस्कार अगली उत्पाद होनेवाली पर्याय में आते हैं या नहीं ?

उत्तर : पर्याय तो व्यय होकर ध्रुव में मिल जाती है; अत: व्यय होनेवाली पर्याय उत्पाद होनेवाली पर्याय में कोई संस्कार नहीं डालती।

पूर्व का संस्कार उत्तरपर्याय में आता है ह्न यह तो बौद्धमत है, यह खोटी मान्यता है। उत्पाद की पर्याय को व्यय की अपेक्षा नहीं है, वह तो स्वतंत्र है।

प्रश्न : तो फिर नई पर्याय में (उत्पाद की पर्याय में) पूर्व का स्मरण आता है ह्न वह कहाँ से आता है ?

उत्तर : उत्पाद की पर्याय में स्मरण आता है ह्न वह उत्पाद की सामर्थ्य से आता है। व्यय की पर्याय में जो ज्ञान था, उससे अधिक ज्ञान उत्पाद की पर्याय में आ सकता है; परन्तु वह उसकी स्वयं की सामर्थ्य के कारण से आता है।

प्रश्न : ज्ञायक आत्मा का अवलम्बन अकेले ज्ञानगुण की पर्याय लेती हैं या अनन्तगुणों की पर्यायें अवलम्बन लेती है ?

उत्तर : ज्ञायक आत्मा का अवलम्बन अनन्तगुणों की पर्यायें लेती है। ज्ञान से तो बात की है, वैसे अवलम्बन तो सभी गुणों की पर्यायें ज्ञायक का ही लेती है।

प्रश्न : निज द्रव्य की अपेक्षा विना पर्याय होती है ह्न इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर : ध्रुवद्रव्य तो त्रिकाल एकरूप ही है और पर्याय भिन्न-भिन्न रूप से होती है। वह पर्याय अपनी योग्यतानुसार स्वकाल में स्वतंत्ररूप से होती है।

प्रश्न : यदि ध्रुवद्रव्य की अपेक्षा लेवे तो क्या बाधा है ?

उत्तर : ध्रुवद्रव्य की अपेक्षा लेने से व्यवहार हो जाता है। पर्याय, पर्याय के स्वकाल से होती है ह्न यह पर्याय का निश्चय है।

प्रश्न : पर्याय व्यय होकर द्रव्य में ही समाविष्ट हो जाती है। यदि ऐसा है तो क्या अनन्त अशुद्ध पर्यायों के द्रव्य में समावेश हो जाने से द्रव्य को हानि नहीं पहुँचती ?

उत्तर : अशुद्धता तो प्रकट पर्याय में अर्थात् मात्र वर्तमान वर्तती हुई पर्याय में ही निमित्त के लक्ष से होती है। वह पर्याय व्यय होकर द्रव्य में समा जाने पर पर्यायरूप से नहीं रहती, अपितु पारिणामिकभावरूप हो जाती है। द्रव्य में विकार पड़ा नहीं, इसलिए उसमें कभी भी हानि नहीं होती।

प्रश्न : पर्याय द्रव्य का स्पर्श ही नहीं करती तो आनन्द किसप्रकार आता है ?

उत्तर : पर्याय द्वारा द्रव्य का स्पर्श न किये जाने पर भी सम्पूर्ण द्रव्य का ज्ञान पर्याय में आ जाता है; तथापि द्रव्य पर्याय में नहीं आता। धर्मी और धर्म दो वस्तुयें है, पर्याय व्यक्त है और ध्रुव वस्तु अव्यक्त है। यद्यपि यह व्यक्त और अव्यक्त दोनों धर्म एक ही वस्तु के हैं तो भी व्यक्त-अव्यक्त को स्पर्श नहीं करता; परन्तु पर्याय का लक्ष द्रव्यसन्मुख है; इसलिये पर्याय आनन्दरूप परिणमन करती है।

गुरुदेवश्री की जन्मजयंती पर अनेक कार्यक्रम सम्पन्न

1. **जयपुर (राज.) :** यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में गुरुदेवश्री की जन्मजंयती के पावन अवसर पर दिनांक 25 अप्रैल, 04 को रात्रि 8 बजे गुरुदेवश्री के जीवन परिचय से संबंधित वी.सी.डी का प्रसारण किया गया, तदुपरान्त डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की अध्यक्षता में एक विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। मुख्यअतिथि पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा व ब्र.अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री मंचासीन थे।

2. **दिल्ली :** यहाँ आत्मार्थी ट्रस्ट के तत्त्वावधान में दिनांक 10 एवं 11 अप्रैल, 04 को गुरुदेवश्री की जन्मजयन्ती उपकारदिवस के रूप में मनाई गई।

इस अवसर पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने गुरुदेवश्री के संक्षिप्त जीवन परिचय एवं उनके द्वारा प्रवर्तित अनेक सिद्धान्तों की विस्तृत विवेचना की। इसके अतिरिक्त पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, पण्डित राजेन्द्रजी जबलपुर, डॉ. सुदीप जैन, पण्डित धनसिंहजी पिड़ावा आदि विद्वानों ने भी गुरुदेव के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला। **ह्न राकेश जैन, शास्त्री**

3. **देवलाली (महा.) :** यहाँ श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली में श्रीमती मंजुलाबेन कविनभाई परिख परिवार की ओर से दिनांक 17 अप्रैल से 21 अप्रैल 2004 तक गुरुदेवश्री का जन्मजयंती महोत्सव अत्यन्त आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर प्रतिदिन दोनों समय अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनसार ग्रन्थ की प्रारंभिक 33 गाथाओं पर सारगर्भित प्रवचन हुए।

कार्यक्रम का शुभारंभ दिनांक 17 अप्रैल को शोभायात्रा एवं झण्डारोहण से किया गया। दिनांक 21 अप्रैल को प्रात: प्रभातफेरी के पश्चात् स्मरणांजली सभा का आयोजन किया गया।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित मनीषकुमारजी शास्त्री, रहली एवं पण्डित सुबोधकुमारजी शास्त्री ने सम्पन्न कराये।

4. **जबलपुर (म.प्र.) :** यहाँ श्री दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा फुहारा में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की 115 वीं जन्मजयंती के अवसर पर दिनांक 21 अप्रैल, 04 को पण्डित राजेन्द्रकुमारजी द्वारा सोनगढ़ के जिनमन्दिरों पर रचित आध्यात्मिक पूजन की गई। तदुपरान्त श्री अशोककुमारजी की अध्यक्षता में **गुरुदेवश्री के जीवन चरित्र** विषय पर विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी का संचालन पण्डित विरागजी शास्त्री, जबलपुर ने किया। रात्रि में पण्डित राजेन्द्रकुमारजी का गुरुदेव के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर व्याख्यान हुआ।

5. **छिन्दवाड़ा (म.प्र.) :** यहाँ श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, गोलगंज में गुरुदेवश्री की जन्मजयंती प्रसंग पर दिन का शुभारंभ सामूहिक पूजन से हुआ। गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के पश्चात् पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री के प्रवचन का लाभ समाज को मिला।

सायंकाल जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् गुरुदेवश्री के जीवन परिचय पर विचारगोष्ठी का आयोजन हुआ; जिसमें अनेक लोगों ने उनके जीवन से जुडे मार्मिक पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किये।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

कोटा (राज.) : श्री दिग. जैन मुमुक्षु मण्डल के तत्त्वावधान में श्री कुन्दकुन्द शिक्षण केन्द्र ट्रस्ट कोटा द्वारा आयोजित श्री नेमिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सोमवार, दिनांक 3 मई से रविवार, दिनांक 9 मई, 2004 तक अनेक कार्यक्रमों सहित सानन्द सम्पन्न हुआ।

महोत्सव में अध्यात्म जगत के शिरोमणि विद्वान बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' के प्रवचनसार की 90 वीं गाथा पर मार्मिक प्रवचन तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल केप्रात: प्रवचनसार पर एवं रात्रि में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर सारगर्भित प्रवचन हुये। इसके अतिरिक्त पण्डित विमलचन्दजी झांझरी उज्जैन, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर, डॉ. उत्तमचन्दजी जैन सिवनी, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन, ब्र.कैलाशचन्दजी 'अचल' ललितपुर एवं पण्डित देवेन्द्रजी बिजौलिया के प्रवचनों का लाभ भी मिला।

पंचकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठाविधि प्रतिष्ठाचार्य बाल ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना द्वारा सह-प्रतिष्ठाचार्य पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित मनीषजी शास्त्री पिड़ावा, पण्डित संजयजी हरसौरा, पण्डित रतनचन्दजी शास्त्री कोटा, पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पण्डित अनिलजी 'धवल' कानपुर, पण्डित चेतनजी शास्त्री कोटा, पण्डित सुकुमालजी झांझरी उज्जैन, पण्डित नागेशजी पिड़ावा, पण्डित निकलंकजी शास्त्री एवं पण्डित दीपकजी के सहयोग से सम्पन्न कराई गई ।

सम्पूर्ण कार्यक्रमों का निर्देशन बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री, सनावद ने किया।

महोत्सव में नेमिकुमार के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्रीमती सुलोचना-जिनेश्वरदासजी मोदी, खुरई को मिला। सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री ज्ञानचन्दजी-सुमन जैन तथा यज्ञनायक श्री वीरेन्द्रकुमार-सौ. कनकमाला हरसौरा, कोटा थे।

दिनांक 3 मई को झण्डारोहण श्री पूनमचन्दजी नरेशजी लुहाड़िया परिवार, मुम्बई ने किया। प्रतिष्ठामण्डप का उद्घाटन श्री ताराचन्द अशोककुमारजी सौगाणी, जयपुर तथा प्रतिष्ठामंच का उद्घाटन श्री राजकुमार दिनेशकुमार महेशकुमार परिवार, कोटा ने किया।

तपकल्याणक के अवसर पर दीक्षावन में आ. युगलजी का वैराग्योत्पादक प्रवचन हुआ।

दिनांक 9 मई को सर्वप्रथम जिनमंदिर पर ध्वजारोहण श्री महेन्द्रभाई सी.ए. बोरीवली मुम्बई ग्रुप एवं श्री चेतनभाई राजकोट ग्रुप ने तथा जिनमंदिर का उद्घाटन श्री मोतीचन्दजी लुहाड़िया जोधपुर ने किया। 1008 श्री सीमंधरस्वामी की प्रतिमा श्री निमेशभाई केतनभाई अनंतभाई सेठ परिवार मुम्बई, 1008 श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा श्री हर्षवर्धन चिदेश जैन औरंगाबाद एवं डॉ. नरेन्द्रकुमारजी आशीषजी बड़जात्या अमेरिका तथा 1008 श्री महावीरस्वामी की प्रतिमा श्री महेन्द्रकुमार अनिमेषकुमार अभिषेककुमार परिवार कोटा ने विराजमान की । सीमंधर भगवान की मुख्य वेदी पर कलशारोहण डॉ. वासन्तीबेन शाह एवं मुक्ति मण्डल संघ दादर मुम्बई की ओर से श्री वसन्तभाई दोशी मुम्बई ने किया । इसीप्रसंग पर श्री कुन्दकुन्द कहान स्वाध्याय भवन का उद्घाटन

श्री तखतराजजी सोहनलालजी जैन परिवार कोलकाता की ओर से बाबू युगलजी ने किया।

आचार्य कुन्दकुन्द के चरण आ.युगलजी परिवार, कोटा ने स्थापित किये । गगनचुम्बी शिखर पर कलशारोहण करने का सौभाग्य श्री चंदालालजी जैथल को मिला।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर का लगभग 2 लाख रुपये का सत्साहित्य घर-घर पहुंचा तथा गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, युगलजी एवं डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों की 1 लाख रुपये की सी.डी. एवं ऑडियो कैसिट्स बिकीं। साथ ही आचार्य कुन्दकुन्द फाउण्डेशन द्वारा तैयार किये आ.युगलजी के 13 नये सी.डी. का विमोचन किया गया; जो 575 की संख्या में घर-घर पहुँचे। **– कमल बोहरा, अजेय जैन**

आध्यात्मिक बाल संस्कार शिविर सानन्द सम्पन्न

बैंगलोर (कर्नाटक) : यहाँ श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनमंदिर द्वारा आयोजित बाल संस्कार शिविर दिनांक 8 अप्रैल से 14 अप्रैल, 2004 तक सानन्द सम्पन्न हुआ।

प्रथम दिन दिनांक 8 अप्रैल को प्रात: भव्य जुलूस के पश्चात् श्री आदिनाथ दि. जिनमंदिर में जिनेन्द्र पूजन हुई एवं बालकों को शिविर की शिक्षण सामग्री प्रदान की गई। इस अवसर पर श्री भबूतमलजी भण्डारी ने अपने उद्बोधन में शिविर के महत्त्व को स्पष्ट किया, जिससे जिज्ञासु बालकों में प्रथम दिन से ही शिविर को लेकर उत्साह जागृत हुआ।

दैनिक कार्यक्रमों में प्रात: 5.30 से रात्रि 10 बजे तक प्रात: प्रार्थना, व्यायाम, जिनेन्द्रपूजन, सामूहिक कक्षा एवं शिक्षण कक्षायें चलती थी। दोपहर में विभिन्न कक्षाएँ तथा रात्रि में जिनेन्द्रभक्ति, तत्त्वचर्चा, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि का आयोजन किया गया।

शिविर के कुशल संचालन एवं अध्यापन का कार्य शिविर प्रशिक्षक पण्डित किशोरकुमारजी शास्त्री एवं पण्डित विवेक जैन सिवनी ने किया। शिविर में श्रीमती प्रियंका पंचोलिया एवं कु. मोनिका जैन का सहयोगी अध्यापक के रूप में सक्रिय योगदान रहा।

दिनांक 13 अप्रैल, 04 को समस्त विद्यार्थियों की लिखित व मौखिक परिक्षाएँ ली गई; जिसमें समस्त छात्रों ने उत्साह से भाग लिया एवं 100 प्रतिशत का परिणाम लाकर अपनी अभूतपूर्व लगन का परिचय दिया।

दिनांक 14 अप्रैल, 04 को समापन समारोह में पण्डित विवेक जैन सिवनी द्वारा निर्देशित लघु नाटिका क्षणभंगुर संसार एवं आध्यात्मिक कव्वाली का आयोजन किया गया।समस्त उत्तीर्ण छात्र-छात्राओं को प्रमाणपत्र एवं पारितोषिक प्रदान किये गये।

इस अवसर पर श्री भबूतमलजी भण्डारी ने अपने उद्गार व्यक्त किये तथा श्री चंपालालजी भण्डारी ने शिविर में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्रदान करनेवाले साधर्मियों का आभार व्यक्त किया। सम्पूर्ण समाज ने इसप्रकार के शिविरों का पुन: पुन: आयोजन करने हेतु ट्रस्ट से निवेदन किया। **ह्न चम्पालाल भण्डारी**

राजस्थान में जैनसमाज का अल्पसंख्यक दर्जा कायम

जयपुर (राज.) : विगत अनेक सप्ताहों से राजस्थान में जैनसमाज को अल्पसंख्यक दर्जा दिये जाने के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ पनप रहीं थी, जिन समस्त भ्रांतियों का निराकरण करते हुये मुख्यमंत्री श्रीमती वसुंधराराजे सिंधिया ने स्पष्ट किया कि राज्य में जैनसमुदाय को दिया गया अल्पसंख्यक का दर्जा कायम रहेगा, उन्होंने कहा कि अल्पसंख्यक कानून में संशोधन के अध्यादेश के निष्प्रभावी हो जाने से इस दर्जे पर कोई असर नहीं पड़ा है। अल्पसंख्यक का अध्यादेश पारित नहीं कराने के बावजूद जैनसमाज को धार्मिक अल्पसंख्यक घोषित करनेवाली अधिसूचना आज भी पूर्ववत् लागू है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 213 (2) (ए) के अन्तर्गत जैनसमाज को दिया गया यह अधिकार अध्यादेश के स्थायी कानून न बनने के बावजूद भी पूर्ववत् ही रहेगा।

उन्होंने यह भी कहा कि जैनसमाज की आशंकायें निर्मूल है, यह समस्या है ही नहीं, अनावश्यकरूप से जैनसमाज में यह भ्रम फैलाया जा रहा है कि अध्यादेश को विधेयक के रूप में विधानसभा में पारित नहीं करवाने से जैनियों का धार्मिक अल्पसंख्यक दर्जा समाप्त हो गया है; किन्तु यह सत्यता नहीं है। इस सम्बन्ध में अतिरिक्त महाधिवक्ता अरुणेश्वर गुप्ता की भी राय प्राप्त कर ली है।

जैनसंस्कृति रक्षामंच के परामर्शदाता राजस्थान उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री पानाचन्दजी जैन ने उक्त बात की पुष्टी करते हुये कहा कि मुख्यमंत्री द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण पूर्णत: विधिसम्मत है। सुप्रिम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश श्री नरेन्द्रमोहन कासलीवाल ने भी इसी आशय का मत व्यक्त किया।

जैनसंस्कृति रक्षामंच के अध्यक्ष श्री मिलापचन्दजी डंडिया ने उक्त समस्या का सम्मानजनक ढंग से निवारण कर देने के लिये मुख्यमंत्री का जैनसमाज की ओर से धन्यवाद ज्ञापन किया।

दिनांक 18 अप्रैल को जैनसंस्कृति रक्षा मंच तथा श्वेताम्बर महासभा द्वारा भट्टारकजी की नसियां, जयपुर में मुख्यमंत्री श्रीमती वसुंधराराजे का अभिनन्दन समारोह रखा गया।

समारोह में पूर्व न्यायाधीश श्री पानाचन्दजी जैन, लोकायुक्त मिलापचन्द जैन, न्यायमूर्ति श्रीमाल, पूर्व अतिरिक्त मुख्यसचिव पी.एन. भण्डारी, दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष महेन्द्रकुमार पाटनी, तीर्थसंरक्षिणी महासभा के श्री पूनमचन्दजी गंगवाल व धर्मचन्द पहाड़िया, श्री महावीरजी के कार्याध्यक्ष श्री सोहनलालजी सेठी, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, दिग. जैन विद्वत्परिषद से श्री अखिलजी बंसल, दिग. जैन महासभा, राजस्थान जैनसभा, दिग. जैन सोशल ग्रुप्स, दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, जैन युवा फैडरेशन आदि शताधिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा मुख्यमंत्री का सम्मान किया गया।

जैन अल्पसंख्यक दर्जा के सम्बन्ध में विशेष भूमिका निभानेवाले राजस्थान के भाजपा उपाध्यक्ष श्री चन्द्रराज सिंघवी का भी जैनसमाज ने अभिनन्दन किया। **– णमोकार जैन**

38 वें शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन

देवलाली (महा.) : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित एवं पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली द्वारा आयोजित 9 से 26 मई, 2004 तक अठारह दिन चलनेवाले 38 वें श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन समारोह रविवार, दिनांक 9 मई, 2004 को पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल की अध्यक्षता में श्री बलुभाई चुन्नीलाल शाह मुम्बई के करकमलों से सानन्द सम्पन्न हुआ। मुख्यअतिथि श्री जयन्तीभाई डी. दोसी दादर-मुम्बई एवं विशिष्ट अतिथि श्री नितिनकुमार ताराचन्दजी शाह मुम्बई, श्री पूनमचन्दजी लुहाड़िया अजमेर, श्री आर.के. जैन इन्जीनीयर इन्दौर एवं श्री सवाईलाल अमूलकचन्द सेठ मुम्बई आदि भी मंचासीन थे। उद्घाटन से पूर्व श्री ताराचन्द माणकचन्दजी शाह परिवार, मुम्बई ने झण्डारोहण किया।

उद्घाटन समारोह में श्रीमान मुकुन्दभाई खारा ने आगन्तुक विद्वद्गण एवं अतिथियों का स्वागत करते हुये पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट का परिचय दिया। यह शिविर देवलाली में पाँचवी बार लगाने की स्वीकृति प्रदान करने के लिये पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का आभार व्यक्त किया। शिविर का महत्त्व बताते हुए उन्होंने इसे तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिये पंचकल्याणक से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बताया।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के ट्रस्टी एवं प्रकाशन मंत्री ब्र. यशपालजी जैन ने ट्रस्ट द्वारा संचालित गतिविधियों का परिचय देते हुये दक्षिण भारत में भी पूज्य कानजीस्वामी द्वारा प्रचारित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की भरपूर संभावना बताई एवं यह जानकारी भी दी कि इस शिविर में शताधिक शिविरार्थी तो अकेले एक कोल्हापुर जिले से ही पधारे हुये हैं।

अपने अध्यक्षीय भाषण में पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ने शिविरों के मूल प्रेरणास्रोत गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के योगदान का स्मरण कराते हुये शिविर का परिचय एवं उपयोगिता पर प्रकाश डाला।

इसी अवसर पर डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया द्वारा विशेषकर बालकों के लिये लिखी हुई 'जैन के.जी. भाग-1' का विमोचन पण्डित कोमलचन्दजी जैन टडावालों ने एवं 'जैन नर्सरी (गुजराती)' का विमोचन पण्डित कमलचन्दजी जैन पिड़ावावालों ने किया।

उपर्युक्त अतिथि एवं विद्वानों के साथ ब्र. हेमचन्दजी 'हेम' भोपाल, पण्डित दिनेशभाई शाह मुम्बई, पण्डित नरेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित आलोककुमारजी शास्त्री कारंजा, पण्डित संजयकुमारजी राऊत कचनेर, पण्डित धर्मेन्द्रकुमारजी शास्त्री जयपुर, डॉ. राजेन्द्रकुमारजी बंसल अमलाई, डॉ. उज्ज्वलाबेन शहा मुम्बई, श्रीमती कमलाबाई भारिल्ल जयपुर, श्रीमती रंजना बंसल अमलाई, श्रीमती राजकुमारी बेन जयपुर, श्रीमती जयश्री जैन इन्दौर आदि विद्वान व अध्यापकगण भी मंचासीन थे। सभा का संचालन पण्डित शांतिकुमारजी पाटील ने किया।

शिविर के विस्तृत समाचार आगामी अंक में प्रकाशित किये जायेंगे।

12 से
कोटा